गठबंधन धर्म और दमा

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

दो बीमारियां ऐसी हैं जो परेशान तो बहुत करती हैं मगर उनका कोई पक्का इलाज उपलब्ध नहीं है - साधारण जुकाम और दमा। साधारण जुकाम के बारे में एक कहावत है कि यदि आप इसका इलाज करेंगे तो यह एक सप्ताह में ठीक हो जाएगा, और यदि इसे वैसे ही छोड़ देंगे तो ठीक होने में पूरे सात दिन लगेंगे। काश, यही बात दमा पर भी लागू होती।

आज हम इतना तो जानते हैं कि साधारण जुकाम वायरस के कारण होता है। अच्छी बात यह है कि हमारा प्रतिरक्षा तंत्र इस वायरस से लड़कर उसे एक सप्ताह में पछाड़ देता है। मगर दमा का किस्सा अलग है।

दमा फेफड़ों की एक जीर्ण बीमारी है। इसमें वायु मार्ग में सूजन आ जाती है और वे संकरे हो जाते हैं। इसकी वजह से घरघराहट होती है, सांस फूलती है और खांसी चलती है। वैसे उपचार के कई तरीके अपनाए जाते हैं मगर दमा दूर नहीं होता और बार-बार लौटता रहता है।

दमा का कारण आज भी एक पहेली है। मगर हाल के वर्षों में कुछ सुराग मिले हैं जिनसे लगता है कि दमा का सम्बंध बैक्टीरिया से है। ये वे बैक्टीरिया नहीं हैं जो पर्यावरण से आकर हमें संक्रमित करते हैं। दरअसल दमा का ज़िम्मेदार कोई एक बैक्टीरिया नहीं बल्कि उनकी आबादी का एक संतुलन है।

आप पूछेंगे इसका मतलब क्या है। *साइन्स* पत्रिका के 26 नवंबर 2010 के अंक में जेनिफर कज़िन-फ्रेंकेल का आलेख 'बैक्टीरिया और दमाः कड़ियों की पड़ताल' में दमा के हमारे मौजूदा ज्ञान का सार प्रस्तुत किया गया है।

दमा के संदर्भ में कुछ उत्साहवर्धक सुराग मिले हैं। सबसे पहला सुराग यह है कि खेतों, शहरी झुग्गी बस्तियों और इस तरह के अन्य परिवेशों में रहने वाले बच्चों को दमा का खतरा कम होता है बनिस्बत उन बच्चों के जो अपेक्षाकृत स्वच्छ परिवेश में रहते हैं। यह कुछ-कुछ वैसा ही है, जैसे जब यूएस अथवा युरोप में रहने वाले हमारे रिश्तेदार यहां आते हैं। उनके बच्चे 'भारत में पले-बढ़े' बच्चों की अपेक्षा जल्दी बीमार पड़ते हैं। यह भी गौरतलब है कि जहां स्वाइन फ्लू और एच.आई.वी. पश्चिमी देशों में बड़ी-बड़ी महामारी बन गए थे, वहीं हम भारतीयों पर इनका बहुत असर नहीं पड़ा था। इसी तरह, शहरों में कचरा बीनने वाले बच्चों को देखिए। यह जानना रोचक होगा कि उनमें से कितने बच्चे बीमार पड़ते हैं और दमा के शिकार होते हैं।

यह अंतर उस चीज़ के कारण होता है जिसे जन स्वास्थ्य के क्षेत्र में कार्यरत लोग 'स्वच्छता परिकल्पना' कहते हैं। जिन लोगों (और जानवरों) का लगातार संपर्क रोगाणुओं से होता रहता है, वे संक्रमण के खिलाफ प्रतिरोध विकसित कर लेते हैं, जबकि अपेक्षाकृत रोगाणु-मुक्त जीवन शैली वाले लोग जल्दी बीमार पड़ जाते हैं।

दूसरा सुराग ज़्यादा रोचक है। स्वाभाविक रूप से पैदा हुए बच्चों की अपेक्षा सीज़ेरियन ऑपरेशन से पैदा हुए बच्चों में दमा होने की आशंका ज़्यादा होती है। ऐसा लगता है कि योनि मार्ग से पैदा होने वाले बच्चों की तुलना में सीज़ेरियन ऑपरेशन से पैदा होने वाले बच्चे ज़्यादा 'सुरक्षित' मार्ग से दुनिया में प्रवेश करते हैं।

हॉलैण्ड में जारी शोध से संकेत मिल रहा है कि सीज़ेरियन ऑपरेशन से पैदा हुए बच्चों में दमा की आशंका प्राकृतिक मार्ग से पैदा होने वाले बच्चों से दुगनी होती है। इसी प्रकार से जिन बच्चों को एंटीबायोटिक्स दिए जाते हैं, उनमें भी दमा की आशंका ज़्यादा होती है। ऐसा लगता है कि फेफड़ों व आंतों में मौजूद सूक्ष्मजीव आबादी 'सुरक्षा' देने में कुछ भूमिका निभाती है।

कज़िन-फ्रेंकेल द्वारा प्रस्तुत तीसरा सुराग मिशिगन में किए गए एक प्रयोग से मिला है। प्रयोगशाला में जिन चूहों को फेफड़ों व आंतों में कीटाणुओं से संक्रमित किया

गया, उनमें दमा होने की आशंका कम रही, बनिस्बत उन चूहों के जिन्हें संक्रमित तो कराया गया था मगर साथ में एंटीबायोटिक भी दिया गया था। इस प्रयोग का नेतृत्व करने वाले डॉ. गेरी हफनेगल की टिप्पणी है: "जंतु तब तक पूरी तरह स्वस्थ रहते हैं, जब तक कि हम उन पर एंटीबायोटिक का वार न करें।"

यह बात हम पिछले चंद दशकों में ही समझ पाए हैं कि मनुष्य का शरीर एक विविधतापूर्ण प्राणी संग्रहालय है। यह एक समृद्ध और विशाल इकोसिस्टम है जिसमें सूक्ष्मजीव फलते-फूलते हैं। हम चलती-फिरती जैव विविधता के उदाहरण हैं - यह जैव विविधता जंतुओं और वनस्पतियों की नहीं बल्कि तमाम आकारों, आकृतियों और किस्मों के सूक्ष्मजीवों की है। यदि हमारी आंतों में ये बैक्टीरिया न मौजूद हों, तो हम कई भोज्य पदार्थों को पचा नहीं सकेंगे। आपने ध्यान दिया होगा कि एंटीबायोटिक की खुराक लेने के बाद हम कैसे शौचालय की ओर भागते हैं।

दरअसल, हमारा शरीर एक टाउनशिप है जहां सूक्ष्मजीव लगभग हर अंग - आमाशय, फेफड़ों, चमड़ी - में बसे हैं। और ये सूक्ष्मजीव भी हर किस्म के हैं - फफूंद, बैक्टीरिया, वायरस - ये हमारे ऊपर पलते हैं, प्रजनन करते हैं, आबादी बढ़ाते हैं। सारे के सारे खराब भी नहीं हैं। जैसे *लैक्टोबैसिलस* है, जो हमें कुछ किस्म के भोज्य पदार्थों को पचाने में मदद करता है। इनमें से कई को *प्रोबायोटिक्स* कहते हैं। कई पीढ़ियों में हमने 'जीयो और जीने दो' का सबक सीखा है। यह भी हो सकता है कि इनमें से कुछ सूक्ष्मजीवों का विकास हमारे साथ-साथ हुआ हो।

जीव वैज्ञानिक लोग हमारे शरीर के अंदर पाए जाने इन सूक्ष्मजीवों की दुनिया को 'माइक्रोबायोम' कहते हैं। जैसे जीनोम, प्रोटियोम होते हैं, उसी तर्ज़ पर माइक्रोबायोम।

और जैसा कि विभिन्न बड़े-बड़े समुदायों के साथ होता है, इस माइक्रोबायोम के साथ हमारी अंतर्क्रिया और इनकी आपसी अंतर्क्रिया से ही स्वास्थ्य सामंजस्य सुनिश्चित होता है। सबसे बड़ी बात है कि मेज़बान ने (यानी हमने) इनके साथ जीना, इन्हें काबू में रखना और इनकी तादाद को यथेष्ट बनाए रखना (यह काम हमारा प्रतिरक्षा तंत्र करता है) और ठीक उसी तरह इनका उपयोग करना सीख लिया है, जैसे वे हमारा उपयोग करना सीखे हैं।

आप इस टाउनशिप की किसी एक बस्ती को कहीं छेड़ दें, तो इसके असर शरीर के किसी अन्य अंग पर नज़र आ सकते हैं। दरअसल, महत्त्व इसी अंतर्क्रिया और संतुलन - गठबंधन के धर्म का है।

तो हो सकता है कि यह संतुलन हमें दमा को समझने में कुछ मदद करेगा। जैसा कि डॉ. हफनेगल कहते हैं, "पूरा मसला बैक्टीरिया समुदाय की संरचना पर टिका है - उसमें कौन-कौन हैं, उनकी संख्याएं कितनी-कितनी हैं और वे कहां हैं।" मगर इससे दमा पीड़ितों को शायद ही कोई राहत मिले। वे तो चाहते हैं कि स्वस्थ संतुलन को बहाल किया जाए। संतुलन को बहाल करने का काम कैसे किया जा सकता है, यह जीव वैज्ञानिकों के लिए एक चुनौती है। ***(स्रोत फीचर्स)***

वर्ग पहेली 75 का हल

बैं	ग	न			आ	मा	श	य
	णि		बा	घ		ह		
प	त	वा	र			ता		श
	ज्ञ		ह		श	ब	न	म
प्र			मा	णि	क			न
पा	र	भा	सी		र		चु	
त		र			कं	प	कं	पी
		ही		दा	द		द	
प्र	ज	न	न			ख	र	ब